जाति और वर्ण

हिन्दू सामाजिक संगठन की विशिष्टता यह है कि यह वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित है। वर्ण व्यवस्था मनुष्य के स्वभाव के अनुसार काम करने की स्थिति का निर्देश देती है। अर्थात वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति की उसके निजी स्वभाव एवं प्रवृत्तियों के संदर्भ में अपने समूह में स्थिति पर विचार किया जाता है।

वर्ण शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद में मिला जिसमें 'आर्य' और 'दास' दो वर्णों के साथ समाज के तीन व्यवस्थाओं में विभाजन का भी वर्णन है- ब्रह्म, क्षात्र और विश (सामान्य जन)। शूद्र का वर्णन नहीं मिलता बल्कि अयोग्य, चाण्डाल, निषाद जैसे घृणा किये जाने वाले शब्द (पात्र) का वर्णन है। यही चार व्यवस्थाएं आगे चलकर चार वर्ण हो गए। समाज का इन चार वर्णों या व्यवस्थाओं में विभाजन, श्रम विभाजन पर आधारित था ना कि जन्म पर। वर्णों में विवाह सम्बन्धों, खानपान, सामाजिक संबंधो यहां तक कि एक वर्ण से दूसरे वर्ण में सदस्यता परिवर्तन के लिए भी कोई प्रतिबन्ध नहीं थे।

परन्तु जैसे हम वैदिक काल से ब्राह्मण काल में आते है इन चारों वर्णों में श्रेणीक्रम प्रारम्भ हो गया और इसमें ब्राह्मण सर्वोच्च स्थिति में तथा 'शूद्र' निम्नतम स्थिति में हो गए।

एक विचारधारा के अनुसार वर्णों में अन्तर वर्णों में अन्तर व श्रेणीक्रम का सम्बन्ध रंग भेद से था। वर्ण का अर्थ रंग है और इसी रंग के आधार पर "आर्य" और "दास" में अन्तर किया गया होगा क्योंकि आर्यों का रंग 'गोरा' और दासों का रंग काला माना गया है। रंग की धारणा इतनी बलवती हो गई कि कालान्तर में वर्गों को रंग के आधार पर ही वर्णों में पहचान होने लगी। यद्यपि वर्ण की उत्पत्ति के समान ही रिजले, घुर्ये, मजूमदार जैसे विद्वानों ने जाति की उत्पत्ति की भी व्याख्या प्रजाति की दृष्टि से की है, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि जातियां वर्णों के उप-विभाजन है। जातियों की उत्पत्ति का सम्बन्ध वर्णों से नहीं है, यद्यपि जातियों के विकास की प्रक्रिया

में उन्हें वर्णों से सम्बद्ध किया गया और जाति श्रेणीक्रम और जाति गतिशीलता को वर्ण से जोड़ कर बताया गया। इस प्रकार वर्ण ने एक उपरेखा प्रस्तुत की जिसने भारतीय विचार और प्रतिक्रिया को प्रभावित किया।

⇒ **वर्ण तथा जाति में अन्तर** → शाब्दिक रूप से वर्ण शब्द वरी धातु से बना है जिसका अर्थ 'वरण करना' अथवा 'चुनना' है। इसका तात्पर्य यह है कि एक विशेष व्यवसाय को चुनने वाले व्यक्ति एक विशेष वर्ण से सम्बन्धित हो गये। इसी कारण वर्ण-विभाजन को व्यक्तियों के गुण और स्वभाव की भिन्नता पर आधारित माना जाता है। यह समाज का एक कार्यात्मक विभाजन था जिसमें व्यक्ति के गुणों अथवा योग्यता में परिवर्तन हो जाने पर उसके वर्ण की सदस्यता में भी परिवर्तन सम्भव था। इस आधार पर वर्ण तथा जाति की भिन्नता को अग्रांकित अनेक आधारों पर समझा जा सकता है—

(1) वर्ण-विभाजन का आधार व्यक्ति के गुण और कर्म है, जबकि जाति की सदस्यता व्यक्ति को केवल अपने जन्म अथवा वंशानुक्रम से प्राप्त होती है।

(2) वर्ण-व्यवस्था चार प्रमुख व्यावसायिक समूहों के विभाजन से सम्बन्धित है, दूसरी ओर जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत हजारों जातियों और उप-जातियों का समावेश है। स्पष्ट है कि इतनी अधिक जातियों का विभाजन व्यावसायिक आधार पर नहीं हो सकता।

(3) वर्ण-व्यवस्था भारत में वैदिक काल में ही विकसित हो चुकी थी, जबकि जातियों का विभाजन बौद्ध और जैन धर्मों के पतन के बाद तब आरम्भ हुआ जब अनेक कर्मकाण्डों के द्वारा पवित्रता और अपवित्रता के विचारों को एक कठोर रूप दे दिया गया।

(4) वर्ण-व्यवस्था में खुलापन है, जबकि जाति व्यवस्था से सम्बन्धित विभाजन पूरी तरह अपरिवर्तनशील है। वर्ण की विशेषता को स्पष्ट करते हुए डॉ. राधाकृष्णन ने लिखा है कि "जन्म के समय प्रत्येक व्यक्ति शूद्र अथवा अपवित्र होता है, लेकिन अच्छे कर्मों के द्वारा ही वह द्विज अर्थात उच्च वर्णों में से किसी की सदस्यता ग्रहण करता है।" इसके विपरीत, जाति-व्यवस्था में कोई लचीलापन नहीं है। व्यक्ति अपने गुणों और कर्मों में कितना भी सुधार करने के बाद अपनी जाति की सदस्यता को नहीं बदल सकता।

(5) वर्ण समानता की नीति पर आधारित है, लेकिन जातियों का विभाजन असमानतावादी है। इसका कारण यह है कि वर्णों का विभाजन जिन कार्यों अथवा व्यवसायों के आधार पर हुआ, उनमें से महत्व के दृष्टिकोण से किसी को ऊँचा अथवा नीचा नहीं कहा जा सकता। इसकी और, जाति-व्यवस्था में विभिन्न जातियों के अधिकारों में न केवल एक स्पष्ट विभेद किया गया बल्कि इस विभेद को एक न्यायी रूप भी दिया गया।

(6) वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा को सर्वोच्च मानने के बाद भी सभी वर्णों के बीच आदान-प्रदान के सम्बन्धों को मान्यता दी गयी। इसके विपरीत जाति-व्यवस्था के नियमों के द्वारा आदान-प्रदान की इस प्रक्रिया को पूरी तरह रोक दिया गया।

(7) वर्ण-व्यवस्था का मुख्य सम्बन्ध व्यक्ति को अपने व्यावसायिक कर्तव्यों का बोध कराके विशेषीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन देना था। इसकी और, जाति-व्यवस्था, विवाह, खान-पान, व्यवसाय तथा सामाजिक सम्पर्क के प्रतिबन्धों पर अधिक बल देकर केवल जातियों की पृथकता को प्रोत्साहन देने

पर आधारित रही।

वर्ण - व्यवस्था के उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचना से स्पष्ट होता है कि अपने आरम्भिक काल में वर्ण - व्यवस्था का उद्देश्य व्यक्तियों की योग्यता और स्वभाव के आधार पर समाज को अनेक स्तरों में विभाजित करना था। चारों - चारों उच्च वर्णों से सम्बन्धित जिन व्यक्तियों को अधिक अधिकार प्राप्त हो गये उन्होंने ऐसे नियम बनाने आरम्भ कर दिये जिनसे कोई भी व्यक्ति अपने वर्ण की स्थिति में परिवर्तन न कर सके। इनके पश्चात् जब कभी भी वर्ण अन्तर्विवाह अथवा वर्ण से सम्बन्धित नियमों का उल्लंघन किया गया, तब ऐसे व्यक्तियों से नयी - नयी जातियों का निर्माण होने लगा। ऐसा अनुमान है कि आज से लगभग 1400 वर्ष पहले वर्ण - व्यवस्था का अस्तित्व लगभग समाप्त हो गया तथा इसका स्थान जाति - व्यवस्था ने ले लिया।